JETIR.ORG ISSN: 2349-5162 | ESTD Year : 2014 | Monthly Issue
JOURNAL OF EMERGING TECHNOLOGIES AND INNOVATIVE RESEARCH (JETIR)
An International Scholarly Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

विभिन्न यौगिक ग्रन्थों में वर्णित साधक–बाधक तत्त्वों का विवेचनात्मक अध्ययन।

विशाल कुमार भारद्वाज
शोध छात्र
योग विज्ञान विभाग
चौ0 चरण सिंह विश्वविद्यालय मेरठ।

अमूर्तः

साधक–बाधक तत्व की अवधारणा, जो आध्यात्मिक और दार्शनिक प्रथाओं में सहायक और निरोधात्मक तत्वों को संदर्भित करती है, विभिन्न यौगिक ग्रंथों में व्यापक चर्चा का विषय रही है। इस शोध पत्र का उद्देश्य भगवद गीता, योग सूत्र, हठप्रदीपिका और उपनिषद जैसे ग्रंथों में वर्णित साधक–बाधक तत्व का व्यापक अध्ययन प्रदान करना है।

प्रस्तावनाः

साधक–बाधक तत्त्वों का अध्ययन करने से एक योग मार्ग पर प्राप्ति की प्रक्रिया को समझने में सहायता प्राप्त करता है। इससे उसे अपने मार्ग परिप्रेक्ष्य में महत्वपूर्ण परिवर्तन करने की क्षमता मिलती है और उसे पूर्णता की दिशा में आगे बढने में मदद मिलती है। साधक–बाधक तत्त्वों का अध्ययन करने के लिए विभिन्न योगिक ग्रन्थों का महत्वपूर्ण है। प्राचीन समय से ही भारतीय साहित्य में योग के महत्वपूर्ण ग्रन्थ मिलते हैं, जिनमें साधक–बाधक तत्त्वों का विस्तारपूर्ण विवेचन है। साधक–बाधक तत्व की अवधारणा भारतीय दार्शनिक और आध्यात्मिक परंपराओं में गहराई से निहित है। यह उन तत्वों को संदर्भित करता है जो आत्म–प्राप्ति और आध्यात्मिक विकास के पथ पर किसी व्यक्ति की प्रगति का समर्थन या बाधा डालते हैं। ये तत्व न केवल व्यक्तिगत स्तर पर प्रासंगिक हैं बल्कि सामाजिक संरचनाओं और सांस्कृतिक प्रथाओं पर भी गहरा प्रभाव डालते

हैं। भगवद गीता, योग सूत्र, समरसा संस्कृति और उपनिषद उन प्रमुख ग्रंथों में से हैं जो सहायक और निरोधात्मक कारकों की प्रकृति और मानव अस्तित्व के लिए उनके निहितार्थों की अंतर्दृष्टि प्रदान करते हैं। इस शोध पत्र का उद्देश्य साधक–बाधक तत्व और समकालीन समय में इसकी प्रासंगिकता की गहरी समझ हासिल करने के लिए इन ग्रंथों में गहराई से जाना है।

श्रीमद्भगवद् गीताः

भगवद गीता में भगवान कृष्ण ने अर्जुन को साधक–बाधक तत्त्वों के महत्व के बारे में उपदेश दिया है। गीता में साधक के लिए प्रेम, निष्काम कर्म, आत्म–समर्पण की महत्वपूर्णता पर बल दिया गया है। साथ ही, बाधक के रूप में क्रोध, मोह, लोभ, आसक्ति की प्रतिष्ठा की प्रति सावधानी की भी प्रेरणा है।

भगवद गीता, जिसे अक्सर एक दार्शनिक और आध्यात्मिक मार्गदर्शक माना जाता है, सहायक और निरोधात्मक तत्वों के सिद्धांतों को बहुत विस्तार से समझाती है। गीता में 'साधना' (आध्यात्मिक अभ्यास) की अवधारणा और आत्म–प्राप्ति के मार्ग में आने वाली बाधाओं को स्पष्ट किया गया है। पाठ मन की प्रकृति पर मित्र और शत्रु दोनों के रूप में चर्चा करता है, साधक (सहायक) या बाधक (निरोधक) तत्व के रूप में इसकी भूमिका पर प्रकाश डालता है। गीता आध्यात्मिक विकास और आंतरिक सद्भाव प्राप्त करने के लिए इन तत्वों को समझने और उनसे परे जाने के महत्व पर भी जोर देती है।

अत्यधिक भोजन एवं अत्यधिक थोडा भोजन एवं अत्यधिक सोना एवं अत्यधिक जागना! इस प्रकार का स्वभाव यदि कोई साधक रखता है, तो उसका योग कभी सिद्ध नहीं हो सकता। इसी प्रकार घेरण्ड ऋशि ने कहा है, कि– मिताहारी न होने के स्थान पर यदि साधक अत्याहारी आचार–संहिता का पालन करता है, तो नाना प्रकार के रोगों से ग्रसित होकर योग मे सफलता प्राप्त नहीं कर सकता। अतः साधक को अत्याहार की प्रवृत्ति को त्यागना चाहिए। शरीर को धारण करने में समर्थ होने के कारण धातु नाम को प्राप्त हुए वात, पित्त और कफ की न्यूनाधिक खाये तथा पिये हुए आहार पदार्थों के परिणामस्वरूप रस की न्यूनाधिकता को व्याधि अथवा रोग कहते है। व्याधि होने पर चित्त वृत्ति उसमें अथवा उससे दूर करने के उपायों में लगी रहती है।

इससे वह योग में प्रवृत्त नहीं हो सकती। इसी कारण व्याधि की गणना योग के विघ्नों में होती है। अजीर्ण, नींद की खुमारी, अति परिश्रम र्प्रवृत्ति से वाह्यकारवृत्ति का अभाव हो जाता है। अजीर्ण आदि लय के कारणरुप विघ्नों के निवारण करने के लिए पथ्य और लघु भोजन करनें से और प्रत्येक व्यवहार में युक्ति तथा नियम के अनुसार चलने से एवं उत्थान के प्रयत्न द्वारा चित्त को जागृत करने से विघ्न दूर होते है। इस विषय में श्री कृश्ण भगवान् ने भी अर्जुन के प्रति कहा है–

नात्यश्रतस्तु योगासित न चैकान्तमनश्रतः।
न चाति स्वप्नशील जाग्रतो नैव चार्जुन ।।

अर्थात (जो अधिक भोजन करता है, जो बिल्कुल बिना खाये रहता है, जो बहुत सोता है तथा जो बहुत जागता है, उसके लिए हे अर्जुन योग नहीं है बल्कि–

युक्ताहारविहारस्य युत्कचेश्टस्य कर्मसु।
युत्कासवपनाववोधस्य योगो भवति दुःखहा।।

ज़ो नियमपूर्वक भोजन करता है नियमित आहार–विहार करता है। उसके लिए योग दुःख का नाश करने वाला होता है।

पतंजलि योगसूत्रः

पतंजलि के योगसूत्र में साधक–बाधक तत्त्वों का प्रमुख प्रस्थान है। पतंजलि ने 'समाधि पाद' में साधक के प्रकृति, पुरुष, प्रकृति–पुरुष के संसार में प्रक्रिया के महत्वपूर्ण पहलुओं पर प्रकाश डाला है। 'साधना पाद' में साधक के मन की स्थिरता, प्रतिभा, प्रेम, करुणा, मुदिता, उपेक्षा की महत्वपूर्णता पर प्रकाश डाली है। ऋषि पतंजलि से संबंधित, योग सूत्र मानव मन और आध्यात्मिक अभ्यास के साथ उसके संबंध को समझने के लिए एक व्यवस्थित रूपरेखा प्रदान करते हैं। सूत्र चित्त वृत्ति निरोध (मन के उतार–चढ़ाव को रोकना) की अवधारणा को चित्रित करते हैं और विभिन्न साधक और बाधक तत्वों की पहचान करते हैं जो योग में अभ्यासकर्ता की प्रगति को प्रभावित करते हैं। पतंजलि का अंतराय (बाधाओं) का वर्गीकरण उन निरोधात्मक कारकों पर प्रकाश डालता है जो किसी के आध्यात्मिक विकास में बाधा डालते हैं, जबकि क्रिया योग की अवधारणा उन सहायक

तत्वों पर जोर देती है जो आंतरिक परिवर्तन की सुविधा प्रदान करते हैं। पतंजलि के योग सूत्र जैसे दार्शनिक ग्रंथों में, क्लेश (कष्ट) और क्रिया योग (क्रिया का मार्ग) की अवधारणा उन कारकों को चित्रित करती है जो व्यक्तियों को बांधते हैं और जो उन्हें मुक्त करते हैं। इसी प्रकार, अद्वैत वेदांत में, विवेक (भेदभाव) और वैराग्य (वैराग्य) की धारणा को आध्यात्मिक प्रगति के लिए आवश्यक के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

योगसूत्र के अनुसार योग के बाधक तत्व–

व्याधिस्त्यानसंशयप्रमादालस्याविरति।
भ्रान्तिदर्शनालब्धभूमिकत्वानवस्थितत्वानि चित्तविक्षेपास्तेऽन्तरायाः।।

व्याधि– 'धातुरसकरणवैषम्यं व्याधिः' धातुवैषम्य, रसवैषम्य तथा करणवैषम्य को व्याधि कहते है। वात, पित्त और कफ ये तीन धातुएं है। इनमें से यदि एक भी कुपित होकर न्यून या अधिक हो जाये तो यह धातुवैषम्य कहलाता है। जब तक देह में वात, पित्त और कफ समान मात्रा में हैं तो तब इन्हें धातु कहा जाता है। जब इनमें विषमता आ जाती है तब इन्हें दोष कहा जाता है। धातुओं की समता में शरीर स्वस्थ रहता है। विषमता में रूग्ण हो जाता है। आहार का अच्छी तरह से परिपाक न होना रसवैषम्य कहलाता है। यही शरीर में व्याधि बनाता है। ज्ञानेन्द्रियों तथा कर्मन्द्रियों की शक्ति का मन्द हो जाना करणवैषम्य है। योगसाधना के लिए सशक्त और दृढ इन्द्रियों की आवश्यकता होती है। धातु, रस तथा करण इन तीनों के वैषम्य को व्याधि कहते हैं। रोगी शरीर से समाधि का अभ्यास सम्भव नहीं। अतः व्याधि समाधि के लिए अन्तराय हैद्य कास, श्वास आदि दैहिक रोगों को व्याधि कहते हैं तथा मानसिक रोग जैसे– स्मरण शक्ति का अभाव, उन्माद, अरुचि, घृणा, काम, क्रोध आदि को आधि कहा जाता है। आधि शब्द के 'वि" उपसर्ग के योग से व्याधि शब्द बनता है।

स्त्यान– 'स्त्यानं अकर्मण्यता चित्तस्य' अर्थात् चित्त की अकर्मण्यता को स्त्यान कहते हैं। समाधि का अभ्यास करने की इच्छा तो चित्त में होती है किन्तु वैसा सामर्थ्य उसमें नहीं होता। केवल इच्छा से योग सिद्ध नहीं होता, अपितु उसमें योगाभ्यास की शक्ति होनी चाहिए। पुत्रों की आसक्ति, विषयभोग की लालसा तथा जीविकोपार्जन के व्यापार चित्त को उलझाये रखते हैं कि चित्त अकर्मण्यता अनुभव करता है। अकर्मण्यता समाधि में अन्तराय है।

संशय– 'उभयकोटिस्पृग् विज्ञानं संशयः अर्थात् यह भी हो सकता है और वह भी हो सकता है। इस प्रकार के ज्ञान को संशय कहते हैं। योग साधना के विषय में जब साधक को कभी–कभी संशय होता है कि मैं योग का अभ्यास कर सकूंगा या नहीं? क्या मुझे सफलता मिलेगी? क्या समाधि से कैवल्य प्राप्त हो सकेगा? हो सकता है मेरा परिश्रम व्यर्थ चला जाये? तब यह संशयात्मक ज्ञान योग का विघ्न बन जाता है।

प्रमाद– 'समाधिसाधनानामभावनम्' समाधि के साधनों में उत्साह पूर्वक प्रवृत्ति न होना प्रमाद कहलाता है। समाधि का अभ्यास प्रारम्भ कर देने पर उसमें वैसा ही उत्साह और दृढता निरन्तर बनी रहनी चाहिए जैसा उत्साह प्रारम्भ मे था। प्रायः युवावस्था का मद, धन और प्रभुत्व का दर्प आदि साधक के उत्साह को शिथिल कर देता है। अतः प्रमाद समाधि में अन्तराय है।

आलस्य– "आलस्यं कायस्य चित्तस्य च गुरुत्वादप्रवृत्तिः" काम के आधिक्य से शरीर तथा तमोगुण के आधिक्य से चित्त भारीपन का अनुभव करता है। शरीर और चित्त के भारी होने से समाधि के साधनों में प्रवृत्ति नहीं होती, इसी का नाम आलस्य है। प्रमाद और आलस्य में बहुत अन्तर है। प्रमाद प्रायः अविवेक से उत्पन्न होता है। आलस्य में अविवेक तो नहीं होता किन्तु गरिष्ठ भोजन के सेवन से शरीर और चित्त भारी हो जाता है। यह भी योग साधना मार्ग में अन्तराय कहलाता है।

अविरति– 'चित्तस्य विषयसम्प्रयोगात्मा गर्धः अविरतिः शब्दादि विषयों के भोग से तृष्णा उत्पन्न होती है। तृष्णा वैराग्य का शत्रु है। समाधि के लिये वैराग्य प्रमुखतम साधन है। अतः वैराग्य का अभाव योग का अन्तराय है। कोमलकान्त वचन, उनके अंगो को मोहक स्पर्श, पुष्पादि की गन्ध तथा स्वादिष्ट भोज्य पेय आदि व्यंजनों का रस कभी–कभी तत्वज्ञान को भी आवृत्त करके साधक को संसार में आसक्त बना देता है। विषयों के प्रति यह आसक्ति ही अविरति हैं। यह अविरति योग का महान् विध्न कहा गया है।

भ्रान्तिदर्शन– 'भ्रान्तिदर्शन विपर्ययज्ञानम् मिथ्याज्ञान को भ्रान्तिदर्शन कहते है। अन्य वस्तु में अन्य वस्तु का ज्ञान ही मिथ्या ज्ञान है। जब साधक योग के साधनों को असाधन और असाधनों को साधन समझने लगता है तो यह भ्रान्तिदर्शन योग का विघ्न बन जाता है।

अलब्धभूमिकत्व– 'अलब्धभूमिकत्वं समाधिभूमेरलाभ' अर्थात् समाधि की किसी भी भूमि की प्राप्ति न होना भी योग में विध्न है। समाधि की चार भूमियाँ है– सवितर्क, निर्वितक, सविचार तथा निर्विचार। जब प्रथम भूमि की प्राप्ति हो जाती है तो योगी का उत्साह बढ़ जाता है। वह सोचता है कि जब प्रथम भूमि प्राप्त हो गयी है तो अन्य भूमियाँ भी अवश्य ही प्राप्त होगी। परन्तु किसी कारण से उनकी प्राप्ति न होना अलब्धभूमिकत्व कहा गया है। यह भी योग में अन्तराय है।

अनवस्थित्व– "लब्धायां भूमौ चित्तस्याप्रतिष्ठा अनवस्थितत्वम' यदि किसी प्रकार भूमियों में से किसी एक की प्राप्ति हो जाये किन्तु उसमें निरन्तर चित्त की स्थिति न हो तो यह अनवस्थितत्व कहलाता है।

इस प्रकार नौ चित्तविक्षेप योग के अन्तराय कहलाते है। इन्ही को चित्त का मल तथा योग प्रतिपक्ष भी कहा गया है। इन चित्तविक्षेपों के पाँच साथी भी है। जो इन अन्तरायों के होने पर स्वतः हो जाते है।

दुःख दौर्मनस्य अंगमेजयत्व स्वसप्रवासः विक्षेप सहभुवः

1. दुःख– दुःख तीन प्रकार के है– आध्यात्मिक, आधिभौतिक तथा आधिदैविक। आध्यात्मिक दुःख भी दो प्रकार के होते है शारीरिक और मानसिक। आधिभौतिक शब्द की रचना का विचार किया जाए तो ज्ञात होता है कि यह शब्द भूत शब्द से बना है। भूत शब्द का अर्थ है प्राणी अर्थात् प्राणियों के द्वारा दिये गए दुःखों को आधिभौतिक कहा जाता है। दुःखों के तृतीय प्रकार का नाम आधिदैविक है जिसका अर्थ है दैविक शक्तियों के द्वारा दिये गए दुःख। दैविक शक्तियों के रूप में अग्नि, जल और वायु की गणना की जाती है। ये तीनों प्रत्येक के लिए अति आवश्यक है परन्तु आवश्यकता से अधिक या कम होने पर ये दुःखों के उत्पादक होते है। जैसे–अग्नि यदि हमारे उदर अथवा रसोई घर में पर्याप्त मात्रा में रहे तो सुखद परन्तु यदि कम या अधिक हो तो असहनीय होकर दुःखो का कारण बन कर नाशवान् हो जाती है। इसी प्रकार से वायु और जल को समझना चाहिए।

2. दौर्मनस्य– अभिलाषित पदार्थ विषयक इच्छा की पूर्ति न होने से चित्त में जो क्षोभ होता है। उसे दौर्मनस्य कहा जाता है जब प्रयास करने पर भी इच्छा की पूर्ति नहीं होती तो चित्त व्याकुल होता है। यह दौर्मनस्य भी दुःख का साथी है।

3. अंगमेजयत्व– जो शरीर के हाथ, पैर शिर आदि अंगो की कम्पित अवस्था है, वह अंगमेजयत्व कहलाती है। व्याधि आदि अन्तराय शरीर को दुर्बल बना देती हैं जिससे अंगों में कम्पन होने लगता है। यह अंगमेजयत्व आसन, प्राणायाम आदि में व्यवधान उपस्थित करता है। अतः विक्षेप का साथी होने से समाधि का प्रतिपक्षी है।

4. श्वास– जो बाह्य वायु का नासिकाग्र के द्वारा आचमन करता है, वह श्वास कहलाता है अर्थात् भीतर की ओर जाने वाला प्राणवायु श्वास है। यह प्राणक्रिया यदि निरन्तर चलती रहे, कुछ समय के लिए भी न रूके तो चित्त समाहित नहीं रह सकता। अतः यह श्वास रेचक प्राणायाम का विरोधी है। अतः यह समाधि का अन्तराय है

5. प्रश्वास– जो प्राण भीतर की वायु को बाहर निकालता है, वह प्रश्वास कहलाता है। यह श्वास क्रिया भी निरन्तर चलती रहती है। यह भी समाधि के अंगभूत पूरक प्राणायाम का विरोधी होने से समाधि का विरोधी है। अतः विक्षेप का साथी होने से योगान्तराय कहा जाता है।

हठप्रदीपिकाः

हठ–प्रदीपिका में साधक–बाधक तत्त्वों के प्रकार, प्रक्रिया, प्रसिद्धि–लक्षण, महत्व का वर्णन किया है।

हठ–प्रदीपिका के अनुसार साधक तत्व

उत्साहात् साहसाद्धैर्यात्ततत्त्वज्ञानाच्च निश्चयात् ।
जनसङ्गपरित्यगात् षड्भिर्योगः प्रसिद्धयति ।।

उत्साह

उत्साह का अर्थ है उत्साह। शुरुआत में जब विद्यार्थी योग विषय का अध्ययन करना शुरू करते हैं तो उनमें से अधिकांश के अंदर काफी उत्साह नजर आता है और यह इस विषय के लिए अच्छा भी है।

समान विचारधारा वाले लोगों के लिए बहुत सारे समुदाय और सभाएँ हैं । यह एक जीवन प्रशिक्षक बनने, नाम और ढाँचा, खुशी और आत्म–साक्षात्कार हासिल करने का अवसर है। इसलिए मेरा दृढ़ विश्वास है कि हम योग (हठ योग) से जो भी अपेक्षा करते रहे हैं, वह उन अपेक्षाओं को पूरा कर रहा है और इस प्रकार यह सब हमारी इच्छा और उत्साह पर निर्भर करता है।

सहस–वीरता

सहस वीरता है; एक आध्यात्मिक साधक को गुरु और गुरु के दिशानिर्देशों में विश्वास रखना चाहिए , और इस प्रकार साहसपूर्वक उनका कदम दर कदम पालन करना चाहिए। योग में सफलता पाने के लिए वीरता सिद्धांत अभ्यास है, और हठ योग इस प्रकार साधक को गुरु के करीब जाने की अनुमति देता है, और इसलिए उनसे अनकहे रहस्यों को प्रकट करता है और पूछता है।

यह भारतीय परंपरा है कि हम गुरु का दिल जीतने और उनका आशीर्वाद पाने के लिए वर्षों और आजीवन उनकी सेवा करते हैं। यहां छात्र को उसकी गुप्त–विद्या, आत्मविद्या (गोपनीय जानकारी, आध्यात्मिक ज्ञान का उच्चतम रूप) से आरंभ करने का आशीर्वाद दिया जाता है।

दूसरा मुख्य कारण यह है कि यह योग के अभ्यास के लिए भी आवश्यक है, जिसमें आसन, क्रिया और प्राणायाम के विभिन्न पहलू शामिल हैं, जो मानव शरीर के जैविक कार्यों और दर्शन को प्रभावित करते हैं जो हमारे दिमाग और समाज में रहने की शैली को प्रभावित करते हैं; यह उच्च साधना आदि के लिए भी प्रकाश देता है।

ईमानदारी से कहें तो, योग (हठ योग) विषय कभी–कभी साधक को पागल बना देता है और उसके बाद भ्रम, भ्रम और मिथक पैदा करता है।

इसका कारण यह है कि जब कोई अभ्यर्थी आश्वस्त नहीं होता है और इस प्रकार विषय और निर्देशों को नहीं समझता है।

संक्षेप में, हमारे सामान्य जीवन में कई बार हम बहादुरी और नाजुक अहंकार को समझने से चूक जाते हैं, जिससे हममें से कई लोगों में श्रेष्ठ–निम्न जटिलता पैदा हो जाती है, दोनों में मतभेद होते हैं, जब बहादुरी होती है।

ईमानदारी और आत्मनिरीक्षण एक ऐसे कार्य में विलीन हो जाते हैं जो आत्म–प्रशंसा और दिव्य चरणों में समर्पण की ओर ले जाता है, और इसलिए व्यक्ति द्वंद्व में शामिल नहीं होता है, लेकिन नाजुक अहंकार का जीवन छोटा होता है और यह आधे–अधूरे ज्ञान, भय से पैदा होता है , और ईर्ष्या, जो अंत में हमेशा एक गलत विचार, दर्द और कष्ट की ओर ले जाती है।

धैर्य

आध्यात्मिक साधक में धैर्य रखने का गुण उनकी विशिष्टता है, और इसलिए उन्हें पवित्र–हठ योग–साधना में दीक्षित किया जाना चाहिए।

आकांक्षी को आत्म–प्रतिबद्धता, सीखने के प्रति पूर्ण समर्पण, (हठ योग) समझ के साथ एक साथ शुरुआत करनी होगी और उसके बाद सक्षम गुरु/प्रोफेसर के निर्देशों का पालन करके लक्ष्यों को प्राप्त करने को प्राथमिकता देनी होगी।

आज, हममें से लाखों लोग अन्य लोगों को योग आसन करने, कुंडलिनी (मानसिक शक्ति) को जागृत करने, चक्रों को ठीक करने, पराना को नियंत्रित करने आदि सिखाने के लिए दर्शन और अभ्यास सीखना चाहते हैं।

इन सभी योगाभ्यासों के लिए वर्षों की शिक्षा, आत्म–अभ्यास, धैर्य की आवश्यकता होती है और इसलिए सबसे महत्वपूर्ण अनुभव है। इस विषय के अंत में मैं आपका ध्यान शिक्षार्थी और शिक्षकों के लिए विशेष सूचना की ओर आकर्षित करना चाहूंगा, वह है 'प्रश्न और उत्तर'।

यह एक शिक्षार्थी और सक्षम गुरु के बीच होना चाहिए था, एक–दूसरे को अच्छी तरह से जानना और परस्पर विश्वास स्थापित करना, और इस तरह लक्ष्य की ओर एक साथ आगे बढ़ना चाहिए! लेकिन एक–दूसरे के प्रति सम्मानजनक और आश्वस्त रहना न भूलें, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि वह (मास्टर) आपको जवाब देगा या नहीं, लेकिन आपको धैर्य नहीं खोना चाहिए।

तत्त्व–ज्ञान

तत्त्व–ज्ञान एक संस्कृत शब्द है; इसका उपयोग विभिन्न भारतीय वैदिक ग्रंथों द्वारा हठ योग और योग के कई अन्य रूपों में किया जाता है। आइए व्याख्या और स्पष्ट समझ के लिए इसे तोडें:

तत् = वह, तवम् = मैं, और ज्ञान ज्ञान है अर्थात मिट्टी, मिट्टी–बर्तन और मिट्टी–बर्तन के निर्माता का ज्ञान।

गुरु से योग के प्रारंभिक विज्ञान, उन्नत शास्त्रों को लगातार सीखना, और इस प्रकार व्यक्तिगत–स्व के साथ ब्रह्मांड की घटना को समझने के लिए दृढ़ होना, जिससे रज में प्रवेश करके "सत्य को गैर–सत्य" से अलग करने का अभ्यास शुरू होता है। –योग साधना.

तत्त्व–ज्ञान का अध्ययन करने के सच्चे इच्छुक लोगों के लिए और उन लोगों के लिए एक और लाभ जो खुद को योग में आगे मानते हैं, लेकिन किसी कारण से वे पथ से भटक गए हैं और हतोत्साहित महसूस करते हैं।

दृढ़ निश्चय

दृध शब्द का अर्थ है दृढ़ इच्छाशक्ति, दृढ़ निश्चय, सकारात्मकता, शिकायत न करना और निश्चय का अर्थ है निर्णय, संकल्प और प्रतिबद्धता। नई यात्रा शुरू करने से पहले हम इस बात से भलीभांति परिचित हैं कि यात्रा के बारे में ज्ञान, लक्ष्य निर्धारित करना और उसे प्राप्त करने के लिए एकनिष्ठ समर्पण रखना, लक्ष्य प्राप्त करने का आवश्यक सिद्धांत है।

इसलिए जिस क्षण हम आधी–सफलता, नाजुक अहंकार के कारण ढीले पड़ जाएंगे और सांसारिक गतिविधियों में लग जाएंगे, यह रास्ते में बाधा उत्पन्न करेगा।

मैं आपको एक कहानी याद दिलाता हूं, जो भगवान यमराज के साथ नचिकेता की बातचीत के बारे में है। यह कहानी कठोपनिषद से है, जहां नचिकेता की दृढ़ इच्छाशक्ति उसे आत्मज्ञान के प्रयास की ओर ले गयी।

इस प्रकार ज्ञान प्राप्त करने के बाद नचिकेता संतुष्ट हो गए और अपने गुरु (यमराज) को प्रणाम करने के बाद उन्हें ज्ञान प्राप्त हुआ। इस कथा में, हमने उस युवा नचिकेता को उसकी धार्मिकता, साहस के साथ दृढ़ इच्छाशक्ति, संकल्प और सर्वोच्च ज्ञान देने से पहले महान गुरु (मृत्यु के देवता) द्वारा परीक्षित किया।

जनसंघ परित्याग

जनसंघ परित्याग सार्वजनिक परित्याग है; हमने बाधकतत्त्व में जनसंघ का अध्ययन एक बाधा के रूप में किया है, और साधक तत्व में हमें फिर से यह याद दिलाया जाता है कि बड़े पैमाने पर जनसंपर्क क्यों छोड़ दिया जाना चाहिए, और इस प्रकार परंपरा कहती है, सामाजिक और धार्मिक रूप से उत्पन्न होने वाली बाधाओं से बचें स्तर।

अधिक जनसंपर्क करने और स्वयं को पर्याप्त समय न दे पाने के कारण शारीरिक और मानसिक ऊर्जा नष्ट हो जाती है। योग के गहन जिज्ञासु के लिए जनसंपर्क का त्याग आवश्यक एवं लाभकारी बताया गया है।

यदि इसे ठीक से नहीं समझा गया तो यह मदद क्यों नहीं करता?

सार्वजनिक परित्याग का मतलब यहां अपने आप को जबरदस्ती एक कमरे में बंद कर लेना, परिवार के सदस्यों, दोस्तों और तनाव/अवसाद, शर्मिंदगी आदि की परिस्थितियों से बचना नहीं है।

इसका मतलब यहां जागरूक रहने, अपने वरिष्ठों के साथ समय बिताने, जो आपको प्रगति करने में मदद कर सकते हैं, शांतिपूर्ण माहौल में स्व–अध्ययन पर समय बिताना, एक सक्षम शिक्षक या प्रोफेसर के मार्गदर्शन में रहना, सामाजिक कार्यक्रमों में भाग लेने के लिए समाज में जाना शामिल है। –धर्म कार्यक्रम करें और सीखें, तार्किक रूप से चिंतन करें,

यह कभी न सोचें कि आप दूसरों से श्रेष्ठ/अलग हैं, इतनी जल्दी निर्णय न लें, इत्यादि। ऐसा माना गया है कि यदि आप दिल से साधक तत्व का पालन करते हैं, खुद पर भरोसा करते हैं, तो यह आपकी योग यात्रा को अधिक तेज और फलदायी बना देगा।

हठप्रदीपिका के अनुसार साधक तत्व

अत्याहारः प्रयासश्च प्रजल्पो नियमाग्रहः ।
जनसङ्गश्च लौल्यं च षड्भिर्योगो विनश्यति।।

अत्याहार / अत्यधिक भोजन करना :– अत्याहार अर्थात अधिक भोजन करने से योग मार्ग में बाधा उत्पन्न होती है । अत्याहार को स्वामी स्वात्माराम ने पहला बाधक तत्त्व माना है । अधिक भोजन करने से व्यक्ति का पाचन संस्थान (क्पहमेजपअम`लेजमउ) खराब हो जाता है । जिससे उसे अपच व मोटापा आदि पाचन तंत्र के रोग हो जाते हैं । दूसरा ज्यादा भोजन करने से व्यक्ति को आलस्य आता है । साथ ही अत्यधिक भोजन करने से भोजन के प्रति राग हो जाता है । राग की उत्पत्ति होने से साधक योग साधना में अग्रसर नही हो पाता है । अतः अत्याहार योग मार्ग में बाधा उत्पन्न करने वाला तत्त्व है । एक योगी साधक के साथ दृ साथ अन्य सामान्य व्यक्तियों को भी अत्यधिक भोजन करने से बचना चाहिए । अत्यधिक भोजन न करना सभी के लिए हितकर है ।

प्रयास / अत्यधिक परिश्रम करना :– अत्यधिक प्रयास या अत्यधिक परिश्रम करने से भी योग मार्ग में बाधा उत्पन्न होती है । अत्यधिक परिश्रम का अर्थ ज्यादा शारीरिक श्रम अथवा मेहनत करना होता है । ज्यादा शारीरिक श्रम करने से शरीर की शक्ति ज्यादा मात्रा में व्यय (खर्च) होती है । और यदि शरीर की शक्ति किसी अन्य कार्य में ज्यादा खर्च होती है तो योग साधना के समय साधक में आलस्य आना शुरू हो जाता है । जिससे वह पूरी ऊर्जा के साथ योग साधना नही कर पाता है । इसलिए एक योगी को अनावश्यक शारीरिक श्रम से बचना चाहिए ।

प्रजल्प / अत्यधिक बोलना :– प्रजल्प अर्थात अत्यधिक बोलना भी योग मार्ग में बाधा उत्पन्न करने वाला बाधक तत्त्व है । जो व्यक्ति सारा दिन बक दृ बक (बकवास) करते रहते हैं । उनका मन कभी भी स्थिर नही

रह सकता । साथ ही अत्यधिक बोलने से शरीर की ऊर्जा भी ज्यादा खर्च होती है । साधक की जो ऊर्जा योग साधना में लगनी चाहिए वह अत्यधिक बोलने में व्यर्थ हो जाती है । इसके अलावा अधिक बोलने से व्यक्ति की बात की महत्ता (उपयोगिता) भी कम हो जाती है । इसलिए योगी साधक बेकार की बकवास से बचना चाहिए ।

नियमाग्रह / अत्यधिक आग्रह करवाना :– वह सिद्धान्त या दिशा– निर्देश जिनका पालन किसी विशेष लक्ष्य की प्राप्ति के लिए किया जाता है वह नियम कहलाते हैं । इन आवश्यक दिशा– निर्देशों के पालन से ही हम अपने विशेष प्रयोजन सिद्ध करते हैं । लेकिन कुछ व्यक्ति इन नियमों का पालन करने में कुछ ज्यादा ही कठोर हो जाते हैं । वह यह मानने लगते हैं कि इसी नियम का पालन किया जाना चाहिए । अन्य किसी नियम का नहीं । इससे वह एक ही नियम के प्रति ज्यादा कठोर हो जाते हैं । इसे एक प्रकार का हठ भी कह सकते हैं । जिस प्रकार एक बच्चा किसी खिलौने के लिए हठ कर लेता है । और उसके न मिलने की स्थिति में वह काफी उत्पात भी मचाता है और रुष्ट भी हो जाता है । अतः एक योग साधक को इस प्रकार के हठ अर्थात नियमाग्रह से बचना चाहिए ।

जनसंग / अत्यधिक लोगों से सम्पर्क :– जनसंग अर्थात ज्यादा व्यक्तियों के सम्पर्क में रहने से भी योग मार्ग में सिद्धि प्राप्त नही होती है । जनसंग को योग मार्ग में बाधक माना है । इसलिए एक योग साधक को जनसंग का परित्याग अर्थात करना चाहिए । जो योगी साधक ज्यादा लोगों के सम्पर्क में रहता है । वह योग मार्ग में आगे नही बढ़ पाता है । क्योंकि सभी व्यक्ति अलग– अलग स्वभाव वाले होते हैं । उनमें कुछ सात्विक प्रवृत्ति के होते हैं तो कुछ राजसिक व तामसिक प्रवृत्ति के होते हैं । सात्विक प्रवृत्ति के व्यक्तियों से सम्पर्क स्थापित करने में कोई नुकसान नही होता है । लेकिन राजसिक व तामसिक प्रवृत्ति के लोगों से सम्पर्क रखने से साधना में विघ्न पड़ता है । इसलिए योगी को अत्यधिक लोगों के सम्पर्क से बचना चाहिए । योग मार्ग में सफलता प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है ।

लौल्यं / चंचलता, मन का अत्यधिक चंचल होना :– मन की चंचल प्रवृत्ति को भी योग में बाधक माना गया है । जब व्यक्ति का मन चंचल होता है तो उसकी किसी भी कार्य में एकाग्रता नही बन पाती है । और एकाग्रता के अभाव से वह अपने किसी भी कार्य को सफलतापूर्वक नही कर पाता है । किसी भी कार्य की सफलता और असफलता के बीच एकाग्रता का ही अन्तर होता है । किसी कार्य को करते हुए यदि मन एकाग्र है तो वह कार्य निश्चित तौर से सफल होता है । और कार्य को करते हुए यदि मन में एकाग्रता नही है अथवा एकाग्रता का अभाव है तो व्यक्ति उस में कार्य सफल नही हो पाएगा । मन की चंचलता योग मार्ग का बहुत बड़ा बाधक तत्त्व है । इसलिए योग की सिद्धि के लिए मन की चंचलता को दूर करना अति आवश्यक है ।

उपनिषदः

उपनिषद, प्राचीन दार्शनिक ग्रंथ जो हिंदू विचार की नींव बनाते हैं, वास्तविकता की प्रकृति और आत्म–प्राप्ति के लिए मानवीय खोज में गहराई से उतरते हैं। ये ग्रंथ उन बाधाओं (बाधक) को संबोधित करते हुए आत्मान (स्वयं) और ब्रह्म (सार्वभौमिक चेतना) की अवधारणा पर प्रकाश डालते हैं जो किसी के वास्तविक स्वरूप की प्राप्ति में बाधा डालते हैं। उपनिषद विभिन्न साधक तत्वों जैसे विवेक (विवेकपूर्ण ज्ञान), वैराग्य (वैराग्य), और श्रद्धा (विश्वास) को भी प्रस्तुत करते हैं, जो सीमित मान्यताओं को पार करने और आध्यात्मिक मुक्ति प्राप्त करने में सहायक हैं।

योगकुंडली उपनिषद आलस्य, अधिक नींद, संदेह या अन्य मूर्खतापूर्ण कारणों से योग से बचने की चेतावनी भी देता है। ऐसे व्यवहार योग के लक्ष्यों को प्राप्त करने में बाधक हो सकते हैं।

निष्कर्षः

साधक–बाधक तत्व की अवधारणा, या यौगिक अभ्यास में कारकों को सुविधाजनक बनाने और बाधित करने का सिद्धांत, विभिन्न यौगिक ग्रंथों में एक आवर्ती विषय है। इन सभी ग्रंथों में, आत्म–प्राप्ति के मार्ग पर प्रगति के लिए बाधाओं पर काबू पाने और आध्यात्मिक विकास के लिए अनुकूल परिस्थितियों को विकसित करने

के विचार पर जोर दिया गया है। कुल मिलाकर, विभिन्न यौगिक ग्रंथों में साधक–बाधक तत्व का अध्ययन आध्यात्मिक व यौगिक विकास के लिए अनुकूल परिस्थितियों का पोषण करते हुए बाधाओं को पहचानने और उन पर काबू पाने के महत्व की सार्वभौमिक मान्यता को रेखांकित करता है। यह व्यापक समझ व्यक्तियों को आत्म–साक्षात्कार के उनके संबंधित पथों पर मार्गदर्शन कर सकती है और विभिन्न परंपराओं में यौगिक अभ्यास की बहुमुखी प्रकृति की गहरी सराहना कर सकती है।

विभिन्न यौगिक ग्रंथ, मानव व्यवहार, आध्यात्मिक अभ्यास और सामाजिक सद्भाव में गहन अंतर्दृष्टि प्रदान करते हैं। इन ग्रंथों का गहन अध्ययन करके, इस शोध पत्र ने भगवद गीता, योग सूत्र और उपनिषदों में बताए गए सहायक और निरोधात्मक तत्वों की जटिल गतिशीलता को उजागर करने का प्रयास किया है। निष्कर्ष व्यक्तिगत विकास, यौगिक विकास और सांस्कृतिक संवर्धन के लिए सहायक दृष्टिकोण विकसित करते समय निरोधात्मक कारकों को समझने और उनसे पार पाने के महत्व को रेखांकित करते हैं। यह व्यापक अध्ययन व्यक्तियों को समग्र कल्याण और सामंजस्यपूर्ण सह–अस्तित्व की दिशा में मार्गदर्शन करने में साधक–बाधक तत्व की स्थायी प्रासंगिकता के प्रमाण के रूप में कार्य करता है।

संदर्भ ग्रंथ

1. स्वात्मारामकृतः हठप्रदीपिका, कैवल्यधान, श्रीमन्मधाव योग मन्दिर समिति पुणे। (2001)
2. दिगम्बर जी स्वामी–झाा डां पीतम्बरः हठप्रदीपिका, कैवल्यधान श्रीमन्माधव योग–मन्दिर समिति–पुणे (2001)
3. परमहंस स्वामी अनन्त भारतीः हठयोगप्रदीपिका, चौखम्बा ओरियन्टालिया प्रकाशन।
4. महर्षि पतंजलिकृतः योग–दर्शन, गीताप्रेस, गोरखपुर।
5. स्वामी रामसुखदास : गीता प्रबोधनी, गीताप्रेस गोरखपुर।
6. वाना माली (2008), शक्तिः दिव्य माँ का क्षेत्र, आईएसबीएन 978–1–59477–199–6, पृष्ठ 311–314, उद्धरणः " योग–कुंडलिनी उपनिषद।
7. दासगुप्ता, सुरेंद्रनाथ (1975)। भारतीय दर्शन का इतिहास । वॉल्यूम. 1. दिल्ली , भारतः मोतीलाल बनारसीदास।
8. मैरी स्कॉट (2007), द कुंडलिनी कॉन्सेप्टः इट्स ओरिजिन एंड वैल्यू, जैन पब्लिशिंग।
9. सतपाल खीचरः हठरत्नावली, नोशन प्रेस दिल्ली।
10. श्री नन्दलाल दशोरा, व्याख्याकार : पातंजल योग सूत्र, रणधीर प्रकाशन, हरिद्वार।